International Journal of Social Science Research (IJSSR)
Volume- 1, Issue- 5 | September - October 2024
ISSN: 3048-9490

हिंदी नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना में बालमुकुन्द गुप्त का योगदान

देव प्रकाश

शोध छात्र, इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश:

वर्तमान समाज साहित्यकार की चेतना और रचना को बहुत प्रभावित करता है, इसलिए एक साहित्यकार को अपने समय में रहना संभव नहीं होता। बाबू बालमुकुन्द गुप्त का जन्म राष्ट्रीय भावना और भारतीय समाज की समझ से हुआ था। इन्होंने देश, उसके लोगों, उसके सुख-दुःख और समस्याओं को समझा। गुप्त जी स्वाभिमानी और देशप्रेमी पत्रकार हैं। उपनिवेशवादी शासन-व्यवस्था में होने वाले शोषण और पक्षपात के खिलाफ लिखते रहे और लोगों को जागरूक करते रहे। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की कमजोरियों को दिखाने का प्रयास किया। इनकी भाषा मुख्यतः व्यंग्य है।

बहुत ही लम्बे पराधीनता के कालखंड से परेशान और हताश भारत में समाज की दशा और दिशा में परिवर्तन के लिए नवजागरण और नए विचारों ने क्रान्तिकारी भूमिका निभाई। मध्ययुगीन संकीर्णता और रूढ़ियों से साहित्य और समाज को मुक्त कर आधुनिक और प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना का कार्य पुनर्जागरण काल में होता है। यह वही कालखंड है जिसमें प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासन भारत में स्थापित होता है और इस्लामिक शासन का पराभव। अंग्रेजों से मुक्ति का जो संग्राम 1857 में प्रारम्भ होता है उसमें भारत के हर वर्ग की और व्यक्ति की अपनी-अपनी भूमिकाएँ रहीं।

स्वभावतः हर व्यक्ति को अपने देश और जन्मस्थान से स्नेह होता है। देश-प्रेम एक सहज मानवीय स्वभाव है। एक सच्चे देशप्रेमी की यह पहचान होती है कि "वह अपने देश के सभी मनुष्य-पशु-पक्षी, लता, गुल्म, पेड़-पत्ते, वन, नदी, नाले, झरने आदि से प्रेम करेगा। वह अपने देश के प्रत्येक स्वरूप को चाह भरी दृष्टि से देखेगा, विदेश में होने पर वह अपने देश के स्वरूप को याद करके तरसेगा और आँसू बहाएगा।"[1] ऐसे में एक सहृदय साहित्यकार अपने समकालीन परिस्थितियों से कटा कैसे रह सकता है?

"आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्ति या विशेषता आध्यात्मिकता से ऐहिकता की ओर झुकाव है। आधुनिक काल में आध्यात्मिकता से ऐहिकता की ओर झुकाव का एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य वहाँ मिलता है जहाँ कवि ईश वन्दना के बाद मातृभूमि वन्दना में रुचि लेने लगते हैं। देवी दुर्गा की परिकल्पना माँ के रूप में होती है और कहा जाता है कि विवेकानन्द ने माँ की इस परिकल्पना को भारत माँ में ढाला।"[2]

पुनर्जागरण काल में साहित्य का मूल उद्देश्य ही देश-प्रेम हो गया था और उस समय के बड़े रचनाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक शीर्षक निबन्ध में नाटक की रचना का उद्देश्य ही 'देश वत्सलता' बताया है। आधुनिक कविता के विकास-क्रम को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने क्रमशः देश भक्ति, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक चेतना और जन अस्मिता के पहचान को परिलक्षित किया है। आपने लिखा है- "देश वत्सलता सहज मानवीय वृत्ति है तो

राष्ट्रीयता को इस तुलना में उत्तेजित मनःस्थिति कहा जाएगा। राष्ट्रीयता की अनुभूति पराधीन देश में प्रयत्नपूर्वक जगाई जाती है और यह प्रयत्न अथवा सजगता का तत्त्व आधुनिक भावबोध की आरम्भिक पहचान कही जा सकती है। भारत में राष्ट्रीयता या नेशनलिज्म को विकसित करने का प्रयत्न यहाँ के मनीषियों तथा चिन्तकों ने किया। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ इसी प्रयत्न के साथ होता है।"[3]

राष्ट्रीय भाव-बोध और भारतीय समाज-बोध से भरे इसी कालखंड में प्रसिद्ध साहित्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त का जन्म सन् 1865 ई. में हरियाणा के रोहतक जिले के गुड़ियानी गाँव में हुआ था। बालमुकुन्द गुप्त जी एक सफल "व्यंग्यकार शब्दों के प्रयोग और व्याकरण के सूक्ष्म तत्त्वों के विशेषज्ञ, इतिहास और राजनीति के विद्वान, जीवनी लेखक, हिंदी भाषा के अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष करने वाले सैनिक और अपनी पत्रकार कला द्वारा जनता में नवीन राष्ट्रीय और जनतान्त्रिक चेतना फैलाने वाले लेखक थे।"[4] गुप्त जी के लिए देश का अर्थ है देश की जनता, उसके सुख-दुःख उनकी समस्याएँ। आप अपने को उसका प्रतिनिधि समझते हैं और उनकी आवश्यकता और आकांक्षा को स्वर देते हैं। साथ-ही-साथ उस उपनिवेशवादी शासन के कुचक्र को जनता के सामने उजागर भी करते हैं। हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में यह पहला मौका था जब किसी लेखक को शासन के खिलाफ लिखने के कारण पत्र से अलग कर दिया गया हो।

गुप्त जी अपने देश से प्रेम करने वाले एक स्वाभिमानी पत्रकार थे। उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था के अन्तर्गत होने वाले पक्षपात और शोषण के खिलाफ आप लगातार लिखते रहे और लोगों को जागरूक करते रहे। अँग्रेजी शासन और सामाजिक व्यवस्थाओं से मुक्ति का सबसे बड़ा मार्ग शिक्षा है, लेकिन अंग्रेजों के द्वारा जो शिक्षा के नाम पर छल किया जा रहा था उसके सन्दर्भ में आपने लिखा है कि- "सुना है कि अब के विद्या का उद्धार श्रीमान् जरूर करेंगे। उपकार का बदला देना महत् पुरुषों का काम है। विद्या ने आपको धनी किया है। इससे आप विद्या को धनी करना चाहते हैं। इसी से कंगालों से छीनकर आप धनियों को देना चाहते हैं। इससे विद्या का वह कष्ट मिट जाएगा जो कंगाल को धनी बनाने में होता है। नींव पड़ चुकी है, नमूना कायम होने में देर नहीं। अब तक गरीब पढ़ते थे, इससे धनियों की निन्दा होती थी कि वह पढ़ते नहीं। अब गरीब न पढ़ सकेंगे, इससे धनी पढ़ें या न पढ़ें उनकी निन्दा न होगी।"[5] बात केवल शिक्षा की ही नहीं। सिविल सर्विस परीक्षाओं में भारतीयों के प्रेवश पर जो भेदभाव था और अंग्रेजों में जो नस्लीय विष भरा था आप उसे भी महसूस करते थे। अंग्रेजों के कथनी और करनी के अन्तर को आप खूब समझते हैं और कहते हैं-

"आपने अपनी समझ में बहुत कुछ किया, पर फल यह हुआ कि विलायत जाकर वह सब अपने मुँह से सुनाना पड़ा। कारण यह कि करने से कहीं अधिक कहने का आपका स्वभाव है। इससे आपका करना भी कहे बिना प्रकाशित नहीं होता।"[6]

भारतीयों की गुलामी का एक बहुत बड़ा कारण उनका लालच, स्वार्थ और अवसरवादिता थी। हमारे ही बीच के कुछ लोग अंग्रेजों और विदेशियों से मिले हुए थे, थोड़े लाभ के लिए- "लार्ड कार्नवालिस को आते ही दो एक देशी रईशों के साथ लड़ाई करने की चिन्ता थी, आपके स्वागत के लिए कोड़ियों राजा-रईश बम्बई दौड़े गए

और जहाज से उतरते ही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्य को धन्य समझा। कितने ही बधाई देने कलकत्ते पहुँचे और कितने और चले आ रहे हैं। प्रजा की चाहे कैसी ही दशा हो, पर खजाने में रुपये उबले पड़ते हैं।"[7] प्रजा की गरीबी में इन्हीं चाटुकारों के बल से अंग्रेज मालामाल होते रहे। धन का विदेश गमन भारत की गरीबी का बहुत बड़ा कारण था। अकाल की तरफ से आँखों पर पट्टी बाँधकर दिल्ली में दरबार सजता था।

गुप्त जी की चिन्ता- "रोगी को रोग से, कैदी को कैद से, ऋणी को ऋण से, कंगाल को दरिद्रता से-इसी प्रकार हरेक क्लेशित पुरुष को एक दिन अपने क्लेश से मुक्त करने की थी। लेकिन देखते-ही-देखते लोगों को इस जीवन में क्लेश से मुक्ति मिलने पर वे धीरे-धीरे अपने क्लेशों को झेलते हुए एक दिन इस क्लेशमय जीवन से मुक्त हो जाते हैं।" गुप्त जी इन विषम परिस्थितियों से घबराते नहीं हैं और लिखते हैं- "साधुओं पर संकट पड़ने से शुभ दिन आते हैं। इससे सब भारतवासी शोक सन्ताप भूलकर प्रार्थना के लिए हाथ उठावें कि शीघ्र ही वह दिन आवे कि जब एक भी भारतवासी, चोरी, डकैती, दुश्टता व्यभिचार, हत्या, लूट, खसोट, जाल आदि दोषों के लिए जेल में न जाए। जाए तो देश और जाति की प्रीति और शुभ चिन्ता के लिए दीनों और पद्दलित निर्बलों को सबलों के अत्याचार से बचाने के लिए, हाकिमों को उनकी भूलों और हार्दिक दुर्बलता से सावधान करने के लिए और सरकार को सुमन्त्रणा देने के लिए।" यही नवजागरण है, यही गीता और मानस का प्रभाव है और यही भारत की शक्ति है। इससे ही लोगों में आत्मविश्वास और ऊर्जा का संचार हो सकता था।[8]

गुप्त जी धार्मिक प्रवृत्ति के लेखक थे, किन्तु विचारों में व्यावहारिक भी उनका स्पष्ट मानना था-"यदि हमारे ईश्वर में इतनी शक्ति न हो कि वह हमारे राजा और शासक को हमारे अनुकूल कर सके और उन्हें उदार चरित और न्याय प्रिय बना सके तो इतना अवश्य करे कि हमें सब प्रकार के दोषों से बचाकर न्याय के लिए जेल काटने की शक्ति दे, जिससे हम समझें कि भारत हमारा है और हम भारत के, इस देश के सिवा हमारा कोई ठिकाना नहीं, रहें इसी देश में चाहे जेल में चाहे घर में। जब तक जिएँ, जिएँ और जब प्राण निकल जाए तो यहीं की पवित्र मिट्टी में मिल जाएँ।"" देश और देश के प्रति ऐसी निष्ठा दुर्लभ है जीवन और जीवन के बाद भी इस मिट्टी के प्रति यह लगाव युवाओं को मार्गदर्शन देने के लिए पर्याप्त था।

प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा ने गुप्त जी के सन्दर्भ में लिखा है- "उनके लिए देश का अर्थ है, देश की जनता, वे उन लोगों के प्रतिनिधि बनकर बोलते हैं। जो स्वत्वहीन हैं, जिनका अपना कोई झोपड़ा नहीं है, एक पत्ती पर भी जिनका अधिकार नहीं है। किन्तु सारा भारत इन्हीं का है। भविष्य इन्हीं का है। भारतीय राजनीति में यह नया स्वर था जिसे प्रेमचन्द और निराला जैसे साहित्यकारों ने आगे चलकर खूब समर्थ बनाया।[9]

अंग्रेजों के द्वारा किए जा रहे तरह-तरह के षड्यन्त्रों से आप भलीभाँति परिचित थे। बंग-भंग हो या तुष्टीकरण इनका मकसद केवल भारत के लोगों को बेवकूफ बनाकर अंग्रेजों के शोषण को और प्रबल करना था। गुप्त जी कहते हैं- "इस देश की भलाई की ओर तो आपने उस समय भी दृष्टि न की जब कुछ भला करने की शक्ति आप में थी। पर अब कुछ बुराई करने की शक्ति भी आपमें नहीं रही। कर्जन की बेवकूफी पर इससे तीखा व्यंग्य और क्या हो सकता है। बंग-भंग के कारण इस देश के नौजवानों का उत्साह कम नहीं हुआ लोगों में संघर्ष की प्रेरणा और बलवती हुई।

भारत माता की सन्तानों को बहुत समय बाद यह अहसास हुआ कि भारत की यह मिट्टी, पूजा और वन्दना के योग्य है जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के लोग वन्देमातरम् कहकर चिल्ला उठे। "भारतीयों के मन में यह बात जम गई कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुर्बल की वह नहीं सुनते।"

किसी देश का शासक और शासन प्रजा के लिए माता और पिता के समान होता है जिसका यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के सुख-दुःख का ख्याल रखे। अंग्रेज अपनी इस जिम्मेदारी से विमुख थे। देश की कंगाल, गरीब, फटेहाल जनता की स्थिति उस बालक-सी हो गई थी जो अपनी सौतेली माता से खाने की रोटी माँग रहा था। सौतेली माँ कुछ काम में लगी थी, लड़के के चिल्लाने से तंग होकर उसने उसे एक बहुत ऊँचे ताक में बिठा दिया।

बेचारा भूख और रोटी दोनों को भूल नीचे उतार लेने के लिए रो-रोकर प्रार्थना करने लगा, क्योंकि उसे ऊँचे ताक से गिरकर मरने का भय हो रहा था। इतने में उस लड़के का पिता आ गया। उसने पिता से बहुत गिड़गिड़ाकर नीचे उतार लेने की प्रार्थना की। पर सौतेली माता ने पति को डाँटकर कहा कि खबरदार। इस शैतान लड़के को वहीं टँगे रहने दो, इसने मुझे बड़ा दिक किया है। इस बालक की-सी दशा इस समय इस देश की प्रजा की है।"[10] लार्ड मिंटो के स्वागत में लिखा गया यह कथन अँग्रेजी सत्ता के क्रूर चेहरे को बताने के लिए पर्याप्त है। अकाल, गरीबी, भुखमरी, सूदखोरी और गरीबों के उत्पीड़न से सम्पूर्ण भारत की जो दुर्गति हो रही थी उसे कोई भी संवेदनशील व्यक्ति कैसे बर्दाश्त कर सकता था। शिवशम्भु के चिट्ठ नाम से पूरी एक विचार श्रृंखला ही गुप्त जी ने उस समय प्रकाशित किया जिसमें भंगड़ शिवशम्भु उस समय व्याप्त सभी राजनैतिक और सामाजिक विसंगतियों पर करारा व्यंग्य करता है। ओले पड़ती हुई सर्दी की रात में गरीबों और पशु पक्षियों की दशा देखकर शिवशम्भु कहते हैं-

"ओलों से उनके बाजू कैसे बचे होगे जो पक्षी इस समय अपने अण्डे बच्चों समेत पेड़ो पर पत्तें की आड़ में हैं या घोसलों में छिपे हुए हैं उनपर क्या गुजरी होगी। जरूर झड़े हुए फलों के ढेर में कल सवेरे इन बदनसीबों के टूटे अंडे मरे बच्चे और इनके भीगे सिसकते शरीर पड़े मिलेंगे। हाँ शिवशम्भु को इन पक्षियों की चिन्ता है, पर यह नहीं जानता कि इस अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते। इस समय सैकड़ों अट्टालिकाएँ शून्य पड़ी हैं। उनमें सहस्रों मनुष्य सो सकते हैं, पर उनके ताले लगे हैं और सहस्रों में केवल दो-दो, चार-चार आदमी रहते हैं। अहो, तिस पर भी इस देश की मिट्टी से बने हुए सहस्रों अभागे सड़कों के किनारे इधर उधर की सड़ी और गीली भूमियों में पड़े भीगते हैं। मैले चिथड़े लपेटे वायु, वर्षा और ओलो का सामना करते हैं। सबेरे-सवेरे इनमें से कितनों ही की लाशें जहाँ-तहाँ पड़ी मिलेंगी।"[11]

पराधीन भारत का यह पैराग्राफ अल्ट्रासाउंड है। इसमें एक ओर ब्रिटिश शासन की निर्ममता, और शोषण का चित्र है तो दूसरी ओर भारतवासियों की काहिली का। ऐसी स्थिति से उबरने के लिए जरूरत है संघर्ष की, गुप्त जी लिखते हैं कि कितने ही वर्ष बीत गए बिना हथियार रहने पर भी इस देश के मर्द, मर्द ही कहलाते हैं। इससे जान पड़ता है कि हिजड़ों के पास भी हथियार न रहने से उनको कोई नाम ही का दोष नहीं लग सकता। तथा जैसे हिजड़ों के पास हथियार रहने से कोई लाभ नहीं वैसे ही अँग्रेजी सरकार की समझ में भारतवर्ष के मर्दों के पास हथियार रहने से कोई

लाभ नहीं। मर्द नाम धारियों में स्त्री बनकर नाचने वाले और ढोलकी बजाने वाले कितने ही हैं। हिजड़े अपनी ही ढोलकी और अपने ही पाँव के घुघुरुओं की आवाज पर नाचते हैं, किन्तु मर्द कहलाने वालों में कितने ही ऐसे हैं जो रंडी या जोरू की उँगली के इशारे पर नाचते हैं। फिर हिजड़ों का नाम मर्दों में क्यों न लिखे जाते। इस तरह गुप्त जी भारतीयों को शस्त्र उठाने और संघर्ष के लिए प्रेरित करते हुए दिखते हैं।[12]

बालमुकुन्द गुप्त जी का प्रेम केवल अपने देशवासियों से ही नहीं है वरन् यहाँ की भाषा और संस्कृति से भी उतना ही प्रेम है। उर्दू, अँग्रेजी और हिंदी के द्वन्द्व के उस दौर में आपने हिंदी का पक्ष लिया और उसे भारत के माथे की बिन्दी की तरह स्वीकार किया। आपने हिंदी के विरूद्ध उस समय चल रहे षड्यंत्रों को पहचाना साथ-ही-साथ हिंदी का पक्ष लेने वालों को भी मार्ग दिखाया। आपने लिखा है- "केवल गाल बजाने से भाषा की उन्नति नहीं होती है। भाषा की उन्नति के लिए लेखक चाहिए। लेखक बनाने के लिए पाठक चाहिए और पाठक होने के लिए मातृभाषा पर अनंत अनुराग, अनन्त प्रेम, अनन्त भक्ति चाहिए जब तक इन वस्तुओं का अभाव रहेगा तब तक मातृभाषा की उन्नति-उन्नति चिल्लाना केवल गाल बजाकर भूख बढ़ाना है। यदि सचमुच हिंदी की उन्नति की कामना आपके हृदय में चुभ गई है, तो कमर कसकर खड़े हो जाइए।"[13]

आज जब देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है, तब हमें अपनी इस मिली हुई आजादी की कीमत को भी जानने की जरूरत है। अपने देश के स्वातन्त्र्य समर और लोगों द्वारा दी गई कुर्बानियों को भी ध्यान में रखना होगा। विदेशियों के द्वारा किए गए दमन को भी याद रखना होगा और उनसे सबक सीखकर ही अपनी आशाओं, आकांक्षाओं के अनुकूल, भारत का निर्माण करना होगा जहाँ दमन, शोषण, विभेद, गरीबी आदि का नामोनिशान न हो जहाँ ज्ञान की गंगा प्रवाहित हो। इस जागरण के विचार को पुष्ट करने में बालमुकुन्द गुप्त जी का साहित्य भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।[14]

सन्दर्भ :

1. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग-1 (लोभ और प्रीति), (सं. 2004) संजय बुक सेन्टर वाराणसी : 47

2. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद-निराला-अज्ञेय (सं. 2009) लोकभारती प्रकाशन: 4

3. वही : 5 4. रामविलास शर्मा, 'परम्परा का मूल्यांकन' (सं. 2004) राजकमल प्रकाशन: 110

4. वही:

5. बालमुकुन्द गुप्त, 'निबन्धों की दुनिया' निर्मला जैन (सं.) (2009), वाणी प्रकाशन : 25

6. वही: 29-30 (32 भारत मित्र, 17 सितम्बर 1904 ई.)

7. वही:

8. वही: 53 (भारत मित्र, 30 मार्च 1907 ई.)

9. वही: 53

10. परम्परा का मूल्यांकन: 112

11. निवन्धों की दुनियाः बालमुकुन्द गुप्त, 44 (21 अक्टूबर 1905)

12 . वही 47 (भारत मित्र, 23 दिसम्बर, 1905 ई.) 13. वही 51 (भारत मित्र, 30 मार्च, 1907 ई.)

13. वही: 55

14. वही: 80 (भारत मित्र, 6 अप्रैल, 1901 ई.)